International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 43-45

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 43-45
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-07-2020
Accepted: 20-08-2020

डॉ. राजेश कुमार यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. राजेश कुमार यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत

श्रीमद्भागवत में माया का विवेचन

डॉ. राजेश कुमार यादव

प्रस्तावना

माया का स्वरूप

निर्विशेष निर्लक्षण ब्रह्म से सविशेष लक्षण जगत् की उत्पत्ति क्यों हुई? एक ब्रह्म से नानात्मक जगत् की सृष्टि कैसे हुई? इस प्रश्न के यथार्थ उत्तर के लिए माया के स्वरूप को जानना अत्यन्त आवश्यक है। शंकराचार्य ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप से किया है परन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म–अर्थ–भेद की कल्पना की है। परमेश्वर की बीज शक्ति का नाम 'माया' है। मायारहित होने पर परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती और न वह जगत् की सृष्टि करता है। यह अविद्यात्मिक बीजशक्ति 'अव्यक्त' कही जाती है, यह परमेश्वर में आश्रित होने वाली यहाँ सुप्तिरूपिणी है जिसमें अपने स्वरूप को न जानने वाले संसारी जीव शयन किया करते हैं।[1]

श्रीमद्भागवत में माया (ब्रह्माश्रित शक्ति) को प्रकृति बतलाते हुए मायानिष्ठ उत्पत्त्यादि शक्तियाँ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणपरक हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश का अवबोध कराती हैं। सृष्टिनियामक ब्रह्म माया की सात्त्विक शक्ति से जगत् की उत्पत्ति करते हैं। स्थितिनियामक विष्णु माया की राजसी शक्ति से जगत् की स्थिति (पालन) करते हैं। संहारनियामक महेश माया की तामसी शक्ति से जगत् का संहार (विलय) करते हैं। रज्जु के त्रिगुण की भाँति माया की ये तीन शक्तियाँ अथवा प्रकृति के ये सत्त्वादि तीन गुण परस्पर आश्रित हैं। इनमें एक प्रधान तथा अन्य दो अप्रधान रहकर कार्य करते हैं। इस प्रकार त्रिगुण–सत्ता मायाधीन है।

श्रीमद्भागवत में अनेक स्थानों पर विभिन्न प्रसंगों के सन्दर्भ में माया की चर्चा की गयी है। माया ईश्वर की शक्ति एवं उसके अधीन रहने वाली है उसी के बल से अनेक दिग्विजयी सूर भी पदाक्रान्त होते रहते हैं।1 इस माया का एक नाम योगमाया भी है।[2]

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में माया का स्वरूप उपवर्णित है। तदनुसार यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणों से अतीत हैं, सर्वव्यापक हैं तथापि अपनी गुणमयी माया से जो प्रपंच की दृष्टि से है और तत्त्व की दृष्टि से नहीं है उन्होंने ही सर्ग के आदि में इस संसार की रचना की थी।[3] यहाँ श्लोकसंख्या 1/2/30 में 'अगुणः' पद का अर्थ है[4] – 'स्वतो निर्गुणोऽपि सन्नित्यर्थः'। जैसे अग्नि एक ही है, परन्तु जब वह अनेक प्रकार के काष्ठों में प्रकट होती है तो अनेक सी प्रतीत होती है। वैसे ही भगवान् तो एक ही हैं किन्तु प्राणियों की अनेकता से अनेक दिखलाई पड़ते हैं।[5] भगवान् की भोगरूप लीला को बतलाते हुए श्रीधरस्वामी लिखते हैं कि वे अपने ही बनाये हुए प्राणियों में प्रवेश कर भूत, सूक्ष्म, इन्द्रिय और मन आदि गुणमय भावों से उनके गुण अर्थात् शब्दादि का भोग करते हैं।6 इससे भगवान् की भोग–रूप लीला का स्वातन्त्र्य घोषित होता है।[7] ये सत्त्व, रजस् और तमस् मायाख्य प्रकृति के गुण हैं।[8]

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय में योगीश्वर अन्तरिक्ष और राजा निमिसंवाद के सन्दर्भ में मायामयी सृष्टि के पश्चात् प्रलय की स्थिति को रेखांकित करते हुए योगीश्वर अन्तरिक्ष राजा निमि को बतलाते हैं, – पंचभूतों के प्रलय का समय उपस्थित हो जाने पर अनादि एवं अनन्त काल तक इस द्रव्यगुणात्मक स्थूलसूक्ष्मरूप व्यक्त सृष्टि अव्यक्त में लीन हो जाती है। प्रलय के समय पृथ्वी पर निरन्तर सौ वर्ष तक भयंकर अकाल पड़ता है। अनावृष्टि रहती है। प्रलयकाल की शक्ति से सूर्य की उष्मता और भी अधिक हो जाती है तथा वे तीनों लोकों को तपाने लगते हैं। उस समय शेषनाग (संकर्षण) के मुख से अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाएँ निकलती हैं और वायु की प्रेरणा से चारों ओर विस्तीर्ण हो जाती हैं। प्रलयंकारी मेघों का एक समूह है, उसका नाम है–संवर्तक। इसके पश्चात् वह संवर्तक हाथी के सूँड़ के समान अतिप्रबल धाराओं से सौ वर्ष पर्यन्त वृष्टि करता है। उससे यह विराट ब्रह्माण्ड जल में निमग्न हो जाता है। उस समय जैसे बिना ईंधन के अग्नि शान्त हो जाती है, वैसे ही विराट् पुरुष ब्रह्मा अपने ब्रह्माण्ड रूप शरीर को छोड़कर सूक्ष्म स्वरूप अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।

वायु पृथ्वी के गन्ध का कर्षण कर लेता है, जिससे वह जल के रूप में हो जाता है और जब वही वायु जल के रस को शुष्क कर देता है, तब वह जल अपना कारण अग्नि बन जाता है। जब अन्धकार अग्नि का रूप छीन लेता है तब वह अग्नि वायु में लीन हो जाती है और जब अवकाश रूप आकाश वायु की स्पर्श शक्ति को छीन लेता है तब वह आकाश में लीन हो जाता है। तदनन्तर काल रूप ईश्वर आकाश के गुण शब्द को खींच लेता है, तब आकाश अपने कारण तामस अहंकार में, इन्द्रियाँ राजस अहंकार में और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं के साथ मन और बुद्धि सात्त्विक अहंकार में लीन हो जाती हैं और अहंकार अपने गुणों के साथ महत् तत्त्व में लीन हो जाता है।[2]

श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के नवम अध्याय में मार्कण्डेय मुनि के द्वारा देखी गयी विष्णु की माया का वर्णन है।1 उससे यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् स्थिति या प्रलयकाल में माया का ही रूप है। ईश्वर अपनी माया के ही ब्रह्मा आदि रूपों एवं नामों से इस विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार सम्पन्न करता है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि यह माया अपने त्रिगुण शक्तियों (सत्त्व, रजस्, तमस्) से अनेक प्रकार की भेद–वृत्तियाँ उत्पन्न करती है। यद्यपि इसका विस्तार असीम है फिर भी इस विकारात्मक सृष्टि को तीन भागों में बाँट सकते हैं–अध्यात्म, अधिदेव तथा अधिभूत।3 इसी माया की शक्ति से जीवों के ज्ञान का नाश होता है। ईश्वर की आत्मस्वरूपिणी माया की गति विचित्र है।4 मनुष्य सत्त्व, रज, तम–इन तीन गुणों की माया से बने हुए अच्छे–बुरे भावों या अच्छी– बुरी क्रियाओं में उलझ जाया करते हैं, परन्तु 'ईश्वर' (कृष्ण) उस माया नटी का स्वामी एवं उसे नचाने वाला है।[5]

त्रिगुण–स्वरूप

प्रकृति जिन द्रव्यों का समूह रूप स्वयं होती है वे संख्या में तीन होते हैं–सत्त्व, रज तथा तम। इन तीनों का सामान्य नाम है–गुण। वैशेषिक दर्शन में रूप, रस, गन्ध आदि द्रव्य में रहने वाले पदार्थों को गुण शब्द से पुकारते हैं परन्तु सांख्य के ये तीनों गुण इस रीति से गुण नहीं हैं, बल्कि वे द्रव्य हैं। गुण का अर्थ होता है–रस्सी या डोरी। अतः सत्त्वादि गुण पुरूष को बांधने वाले होते हैं। इसलिए रज्जु के समान इनकी क्रिया होने से ये गुण कहलाते है।

गुण प्रकृति के स्वरूप विषयक अंगरूप हैं, तथा पुरूष को अपने स्वार्थ की सिद्धि करने में सहायक या उपकारक होते हैं। इस विचार से भी इनकी संज्ञा गुण है।[1] इनमें संयोग–वियोग होता रहता है और गुरूत्व लघुत्व आदि धर्मों से ये युक्त भी रहते हैं। इसीलिए क्रिया तथा धर्म से युक्त होने से ये वस्तुतः 'द्रव्य' ही होते हैं।

गुणों को मानने के लिए प्रमाण भी यथेष्ट हैं। जगत् के प्रत्येक पदार्थों में ये तीनों गुण विद्यमान पाये जाते हैं। पेड़ से गिरे मीठे आम की तर संगीत सबको आनन्दित नहीं करती।

रसिक को आनन्द, बीमार को कष्ट तथा तीसरे को न आनन्द न कष्ट देती है। एक ही युवती अपने स्वामी को सुखी बनाती है। अपनी सपत्नियों को दुःखित करती है तथा दूसरे पुरुष में वही मोह उत्पन्न करती है। इस प्रकार एक ही आम, संगीत अथवा युवती से तीनों प्रकार का काम सम्पन्न हुआ। अतः जगत् के प्रत्येक पदार्थ में ये तीनों गुण सदा सर्वथा विद्यमान रहते हैं। सांख्य के अनुसार जो कर्म कार्य में पाये जाते हैं वे ही कारण में विद्यमान रहते हैं। इसलिए जगत के मूल कारण प्रकृति में भी ये गुण वर्तमान हैं। गुणों की सत्ता मानने का यही कारण है। 'प्रकृति' सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम है। ये प्रकृति में विद्यमान रहते हैं और इसीलिए प्रकृति से उत्पन्न होने वाले प्रत्येक पदार्थ में उनका वर्तमान होना न्यायसंगत है।

सत्त्वगुण का स्वरूप

सत्त्वगुण, लघु (हल्का), प्रकाशक तथा इष्ट (आनन्दमय) होता है। यह गुण जहाँ भी रहा है वहाँ इसी प्रकार से रहता है। हल्की चीज ऊपर को उठती है। आग की ज्वाला तथा पाप की गति ऊपर को होती है। यह सत्त्वगुण के ही कारण होता है। ज्ञान विषय को प्रकाशित करता है और इन्द्रियाँ अपने रूपादि विषयों को ग्रहण करती है, सत्त्व के ही कारण। इसी प्रकार सब प्रकार के आनंद, हर्ष, सुख, सन्तोष आदि मन में सत्त्व भावना होने से ही उत्पन्न होते हैं।

रजोगुण का स्वरूप

रजोगुण स्वयं चंचल होता है तथा दूसरों को भी चंचल बनाता है। वह क्रिया का प्रवर्तक होता है। वायु की चंचलता तथा गतिशीलता रज के ही कारण है। रज के ही होने से इन्द्रियाँ अपने विषय की ओर दौड़ती हैं तथ मन चंचल हो उठता है, सत्त्व तथा तम दोनों निष्क्रिय ही होते हैं। उनमें गति प्रदान करने का काम रजोगुण ही करता है। यही उन्हें निष्क्रिय दशा से हटाकर अपने कार्य करने के लिए उत्साहित करता है। यह दुःखात्मक होता है और इसलिए रजोगुण की प्रधानता होने पर वस्तु नितान्त दुःख ही पैदा करती है।

तमोगुण का रूप

तमोगुण गुरु (भारी) तथा रोकने वाला होता है। यह गुण सत्त्वगुण का विरोधी गुण होता है। यह रजोगुण की प्रवृत्ति को रोकता है। इसके अभाव में रजोगुण सदा चलायमान रहता है और आगे बढ़ता ही जाता है, यही उसे रोकता है। यह जड़ता तथ निष्क्रियता का प्रतीक है। यह मोह या अज्ञान पैदा करता है। इसी के कारण तेज की कमी होने से अन्धकार तथा बुद्धि की कमी होकर मूर्खत्व उत्पन्न होता है। गति को रोककर यह प्रमोद, आलस्य, निद्रा, तन्त्र को पैदा करता है। इन तीनों गुणों का रंग तीन तरह का होता है। सत्त्व, उजला होता है, रज लाल तथा तम काला होता है।

तीनों गुणों का सम्बन्ध

ये तीनों गुण परस्पर विरोधी होने पर भी मिलकर एक ही कार्य या फल का सम्पादन करते हैं जैसे तेल, बत्ती तथा अग्नि आपस में विरोधी होने पर भी एक साथ मिलकर सहयोग से दीपक के जलने में कारण होती हैं। बत्ती तथा तेल दोनों आग के विरोधी होते हैं अवश्य परन्तु वे यहाँ आग से मिलकर रूप को प्रकाशित करते हैं। वात, पित तथा कफ आपस में एक दूसरे के विरोधी होते हैं परन्तु ये तीनों मिलकर शरीर को धारण किये रहते हैं। यही दशा इन गुणों की भी है। परस्पर विरूद्ध होने पर भी सहयोग से पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। ये तीनों एक साथ रहते हैं और कभी ऐसा नहीं होता कि ये वियुक्त हो जायें। ये एक दूसरे का अभिभव किया करते हैं अर्थत् तीनों एक ही रूप में नहीं रहते। सत्त्व अपना कार्यरज तथा तम के दबाकर करता है। रज भी सत्त्व तथा तम को दबाता है तथा तमोगुण भी सत्त्व तथा रज को दबाकर अपना काम करता है। जो प्रबल होता है वह अन्य दो गुणों को दबाकर अपना कार्य करता है। वे एक दूसरे का आश्रय भी लेते हैं। सत्त्व, प्रवृत्ति तथा नियम का आश्रय लेकर रज तथा तम का प्रकाश के द्वारा उपकार करता है। इसी प्रकार रज प्रकाश तथा नियम को आश्रित कर प्रवृत्ति से लाभ पहुँचाता है और तम प्रकाश तथा प्रवृत्ति को आश्रित कर अपने नियमन या रोकने का काम करता है।

इन तीनों गुणों का स्वभाव ही होता है कि वे सदा परिवर्तन, परिणाम या विकार उत्पन्न करते रहते हैं। वे सतत परिणामशाली होते हैं,वे एक क्षण के लिए भी परिणाम से हीन अविकृत नहीं रह सकते। विकार उनमें सदा होता ही रहता है। यह विकार दो प्रकार का होता है–प्रलय काल का तथा सृष्टि काल का। प्रलय काल में एक गुण अन्य गुणों से अपने को अलग कर अपने ही रूप में परिणत होता है। अर्थात् 'सत्त्व', सत्त्व रूप में, 'रज', रज रूप में तथा 'तम' तमो रूप में परिणत होता है। उस समय ये तीनों अपने समरूप में रहते हैं। उस समय इनसे कोई कार्य नहीं होता। कार्य होने के लिए इनका परस्पर मिलन तथा विषमता होना आवश्यक

होता है। जब तक एक गुण प्रबल नहीं होता और दूसरे गुणों को नहीं दबाता तब तक सृष्टि का कार्य हो नहीं सकता।
इसलिए प्रलय दशा में जो परिणाम गुणों में होता है वह 'सरूप परिणाम' (समाज रूप से परिणत होना) होता है और उस समय तीनों गुणों की साम्यावस्था होती है और यही 'प्रकृति' कहलाती है। दूसरे परिणाम तब होता है जब एक गुण प्रबल होकर अन्य दो गुणों को अपने वश में कर लेता है तभी सृष्टि आरम्भ होती है। तभी कार्य उत्पन्न होने लगता है इसका नाम है 'विरूप परिणाम'। इस प्रकार दोनों दशाओं में गुणों से गुणन्तर हुआ करता है।

सन्दर्भ

1. अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिख्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्ति यस्या स्वरूपप्रतिबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवः। –शारीरक भाष्य 1/4/3
2. बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम्।
या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम्।। –श्रीमद्भागवत 3/31/38
3. इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः।। –श्रीमद्भागवत 10/3/46
4. स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः।। –श्रीमद्भागवत 1/2/30
5. श्रीधरी टीका, श्रीमद्भागवत 1/2/30
6. यथा ह्यवहितो वह्निर्दारूष्वेक : स्वयोनिषु।
नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तदा पुमान्।। –श्रीमद्भागवत 1/2/32
7. बहुरूपत्वलीलामाह .....। भूतेषु प्राणिषु अन्तर्यामिणोऽपि प्रतियोनिनानात्वेन नानात्वमिवोच्यते। –श्रीधरी टीका, श्रीमद्भागवत 1/2/32
8. भोगरूपलीलामाह.....। असौ हरिर्भूतसूक्ष्माणि चेन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि चात्मा मनश्च तैः स्वयं निर्मितेषु भूतेषु चतुर्विधेष्विति भोगे स्वातन्त्र्यं द्योत्यते।। –श्रीधरी टीका, श्रीमद्भागवत 1/2/33
9. सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणाः। श्रीमद्भागवत 1/2/23 पूर्वार्द्ध
10. एवं मायामयीं सृष्टिमुक्तत्वा प्रलयं दर्शयितुमारभते। धातूनां महाभूतानामुपप्लवे नाशहेतावासन्ने व्यक्तं कार्यं द्रव्यं स्थूलं गुणः सूक्ष्मं तदात्मकमत्यक्ता याव्यक्तं प्रति नेतुमाकर्षति।। –श्रीधरी टीका, श्रीमद्भागवत।। 11/3/8
11. शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि।
....
एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी।। –श्रीमद्भागवत 11/3/9–16
12. अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च।
प्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन विष्णुमायावृतात्मनः।। श्रीमद्भागवत 12/9/19
13. द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक, स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत्।
सृजति हरति पातीत्याख्ययानावृताक्षो, विवृत इव निरूक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः।। –श्रीमदभागवत 12/11/24
14. ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा, विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते।
वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेक, मथाधिदैवमधिभूतमन्यत्।। –श्रीमदभागवत 11/22/30
15. त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः
त्वमेव ह्यात्मायाया गतिं वेत्थ न चापरः।। –श्रीमद्भागवत 11/22/28
16. इति तव सूरयस्त्र्धिपतेऽखिललोकमल–क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः।
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाःपरम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम्।। –श्रीमद्भागवत 10/87/16
17. वाचस्पति मिश्र,तत्व कौमुदी–कारिका 121
18. श्रीमद्भागवत महापुराण – महर्षि व्यास, गोरखपुर (प्रकाशक–गीता प्रेस)
19. महाभारत– महर्षि व्यास,गोरखपुर (प्रकाशक–गीता प्रेस)
20. भागवत पुराण– श्रीराम शर्मा 'आचार्य' (व्याख्याता), बरेली
21. श्रीमद्भागवतरहस्य– स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, बम्बई, 1963
22. श्रीमद्भागवतम् 1–12 स्कन्धान्त– श्रीधरी टीका, काशी
23. श्रीमद्भागवत पन्चरत्न– श्रीकृष्णपन्त अनु0 वाराणसी
24. श्रीमद्भागवतम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ भाग– वंशीधरी टीका, बम्बई
25. श्रीमद्भागवतम् वा0 1–7 – श्रीधरी प्रभृति 11 टीका, वृन्दावन
26. श्रीमद्भागवत के टीकाकार– वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, मथुरा
27. सर्वदर्शन विमर्शः – शिवाजी उपाध्याय, वाराणसी
28. समकालीन भारतीय दर्शन– लक्ष्मी सक्सेना, लखनऊ
29. संस्कृत साहित्य का इतिहास– श्री वाचस्पति गैरोला, वाराणसी
30. सांख्य तत्त्व कौमुदी – डा0 आद्या प्रसाद मिश्र, इलाहाबाद
31. सर्वदर्शन संग्रह– मध्वाचार्य, बम्बई
32. हरिभक्ति रसामृतसिन्धु– श्रीरूपगोस्वामी, काशी
33. पुराणतत्त्व मीमांसा– कृष्णमणि त्रिपाठी, लखनऊ
34. पुराण–विमर्श – श्री बलदेव उपाध्याय, वाराणसी
35. पुराण परिचय– नागशरण सिंह, दिल्ली
36. महाभागवत पुराणम्– पुष्पेन्द्र कुमार, दिल्ली
37. अमरकोष– अमर सिंह, मुम्बई
38. भागवत सम्प्रदाय– बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं0 2010
39. फिलासोफी ऑफ श्रीमद्भागवत–डा0 सिद्धेश्वर भट्टाचार्य दो खण्डों में विश्वभारती से प्रकाशित, 1960 तथा 1962